निरंजनी सम्प्रदाय की अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से मत-भिन्नता

नेहा सिंघी

शोध सार

कबीर प्रवर्द्धित निर्गुण भक्ति साधना तथा उन्हीं के अनुगमन पर परवर्ती काल में स्थापित निर्गुण भक्ति सम्प्रदायों के साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन करने पर उनके जो धार्मिक-सामाजिक विचार सामने आते हैं तथा जिनकी विद्वानों ने इस परम्परा की सर्व-सामान्य मान्यताओं के रूप में स्थापना-सी कर दी है उनमें प्रमुख हैं कि ये निगुर्ण-निराकार ब्रह्म के उपासक थे तथा ईश्वर के सगुण-साकार रूप को न केवल अस्वीकार करते थे बल्कि उसका तीक्ष्णता के साथ खण्डन करते थे। निर्गुण संत-परम्परा वर्ण-व्यवस्था की विरोधी थी। इन संतों ने जाति-पांति तथा ऊँच-नीच की भावना का सब प्रकार से विरोध किया। इसी प्रकार ये शास्त्रोक्त ज्ञान की अवहेलना करते थे। इन्होंने धर्म, दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों को पूरी तरह नकार दिया। निर्गुण परम्परा मन्दिर, मस्जिद, मूर्ति-पूजा आदि का पुरजोर विरोध करती है। लेकिन हम मध्यकाल में ही एक ऐसा निर्गुण सम्प्रदाय देखते हैं जिसकी विचारधारा ठीक वही नहीं है जो हिन्दी-साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय की मान्य विचारधारा है। 17वीं शताब्दी के आसपास राजस्थान में निरंजनी नाम से एक सम्प्रदाय सामने आता है जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अपने को निर्गुण उपासना से संबद्ध (करता है, और इस दृष्टि से यह अन्य निर्गुण सम्प्रदायों के समान ही है। लेकिन कुछ विषयों में जैसे- सगुण के प्रति दृष्टिकोण, वर्ण-जाति व्यवस्था, पुस्तकों तथा पुस्तकीय ज्ञान आदि में यह अपना एक अलग और विशिष्ट दृष्टिकोण रखता है। कबीर आदि ने प्राचीन परम्परा से चली आ रही जाति तथा वर्ण व्यवस्था का सीधे-सीधे प्रखर वाणी से खण्डन किया है चाहे वह धार्मिक क्षेत्र हो या सामाजिक। निरंजनी इसका एकदम से खण्डन नहीं करते वे इसे सांसारिक-सामाजिक व्यवस्था का अंग मानते हुए कर्म-मर्यादा से जोड़ते हैं। धार्मिक क्षेत्र को इस व्यवस्था से मुक्त रखने के पक्षधर हैं। निर्गुण संत-साधक आत्मानुभव को महत्त्व देते हुए पुस्तकों तथा पुस्तक ज्ञान को नकारते हैं लेकिन निरंजनी आत्मानुभव के साथ ही प्राचीन धर्म-दर्शन सम्बन्धी पुस्तकज्ञान को भी महत्त्व देते हैं। निरंजनी निर्गुणोपासक होते हुए भी सगुण को राजमार्ग की संज्ञा से अभिहित कर उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार के कुछ अन्य विचार भी प्राप्त होते हैं जो निरंजनी सम्प्रदाय को अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से अलग वैचारिक धरातल पर स्थित कर देते हैं। हम अपने इस आलेख में कबीर तथा उनके परवर्ती अन्य निर्गुण सम्प्रदायों के तथा निरंजनी सम्प्रदाय के साहित्य का सम्यक् अध्ययन-अनुशीलन कर यह देखने-दिखाने का प्रयास करेंगे कि निरंजनी सम्प्रदाय का दृष्टिकोण अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से किस प्रकार भिन्न है।

बीज शब्द : सम्प्रदाय, निर्गुण, सगुण, ब्रह्म, खण्डन-मण्डन

कबीर प्रवर्द्धित निर्गुण भक्ति साधना तथा उन्हीं के अनुगमन पर परवर्तीकाल में स्थापित निर्गुण

भक्ति सम्प्रदायों के साहित्य का अध्ययन–अनुशीलन करने पर उनके जो धार्मिक–सामाजिक विचार सामने आते हैं तथा जिनकी विद्वानों ने इस परम्परा की सर्व–सामान्य मान्यताओं के रूप में स्थापना–सी कर दी है, उनमें प्रमुख हैं – प्रथम, ये निर्गुण–निराकार ब्रह्म के उपासक थे तथा ईश्वर के सगुण–साकार रूप को न केवल अस्वीकार बल्कि उसका तीक्ष्णता के साथ खण्डन करते थे। द्वितीय, निर्गुण परम्परा मन्दिर, मस्जिद, मूर्ति–पूजा आदि की विरोधी थी। तृतीय, निर्गुण संत परम्परा को वर्ण–व्यवस्था अमान्य थी। इन संतों ने जाति–पाँति तथा ऊँच–नीच की भावना का सब प्रकार से विरोध किया। चतुर्थ, ये शास्त्रोक्त ज्ञान की अवहेलना करते थे। उन्होंने धर्म–दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों को पूरी तरह नकार दिया।

लेकिन हम मध्यकाल में ही एक ऐसा निर्गुण सम्प्रदाय देखते हैं जिसकी विचारधारा ठीक वही नहीं है जो हिन्दी –साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय की मान्य विचारधारा है। 17वीं शताब्दी में राजस्थान में 'निरंजनी' नाम से एक सम्प्रदाय सामने आता है जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अपने को निर्गुण उपासना से सम्बद्ध करता है और इस दृष्टि से यह अन्य निर्गुण–सम्प्रदायों के समान ही है। परन्तु कुछ विषयों में जैसे सगुण के प्रति दृष्टिकोण, वर्ण–जाति व्यवस्था सम्बन्धी विचार तथा प्राचीन धार्मिक–दार्शनिक ग्रन्थों और उनमें निहित ज्ञान आदि के सम्बन्ध में यह अपना एक अलग और विशिष्ट दृष्टिकोण रखता है।

निरंजनी सम्प्रदाय के इस दृष्टिकोण पर विचार करने से पूर्व आवश्यक है कि हम इस सम्प्रदाय का परिचय प्राप्त करलें अत: सर्वप्रथम निरंजनी सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है ––

एक संगठन के रूप में निरंजनी सम्प्रदाय की विधिवत् स्थापना का श्रेय संत हरीदास को है। उन्होंने विक्रम की 17वीं शताब्दी में वर्तमान राजस्थान प्रदेश के नागौर जिले के अन्तर्गत डीडवाना नामक स्थान पर इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी। डीडवाना में निरंजनी सम्प्रदाय का यह केन्द्र 'गाढ़ा–धाम' के नाम से प्रसिद्ध है। अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से निरंजनी सम्प्रदाय इस दृष्टि से भी विशिष्टता लिए हुए है कि इसमें किसी एक महन्त या संत को संस्थापक/प्रवर्त्तक आदि के रूप में प्रथम या शीर्ष स्थान पर न रखकर बारह महन्तों को बराबर का महत्त्व दिया जाता है। सम्प्रदाय में इन द्वादश महन्तों के प्रति समान पूज्य भाव पाया जाता है। इसी सम्प्रदाय के एक संत हरिरामदास निरंजनी के निम्नलिखित छन्द से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है–

जन हरीदास हरि सुमरि दास तुरसी तत पाया।
स्याम तजी सब स्यामता पद पूरण ध्याया।
ध्यान धरे धरि मिल्या नाथ मत नाथ ही गाया।
कान्हड़दास कृपाल षेम मुनि षेम समाया।
मोहन भज्या मुरार दास जगजीवण सिदवर।
आनंदास जगनाथ भऐ प्रभु के अनुचर।
घाटि बाधि इन मैं नहीं अधिकारी निज धाम के।
ऐ द्वादश महंत निरंजनी उर बसो सदा हरिराम के।।[1]

निरंजनी सम्प्रदाय की कबीर तथा अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से मत भिन्नता के क्रम में हम सबसे पहले

ब्रह्म के स्वरूप तथा उसके उपासना सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार कर रहे हैं। जैसा कि सभी जानते और मानते हैं कि कबीर ने ईश्वर के केवल निर्गुण रूप को ही स्वीकार किया है उन्होंने सगुण का खण्डन किया है– 'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना' यह सच है कि निरंजनी संत भी मूलत: निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे लेकिन उनकी रचनाओं के अनुशीलन से उनकी यह मान्यता सामने आती है कि उन्होंने निर्गुण को विशेष महत्त्व देते हुए एक सीमा तक सगुण को भी स्वीकार किया है। निरंजनी संत तुरसीदास स्पष्टत: लिखते हैं–

तुरसी ऐक निरगुन सरगुन ऐक, उभै रूप इह सार।
सकल सास्त्र सुमृतन कह्या, कोउ जानै जाननहार।।[2]

वस्तुत: निरंजनी सम्प्रदाय शंकराचार्य के विचारों से विशेष प्रभावित है। शंकराचार्य के अनुसार परमार्थ रूप से केवल ब्रह्म ही सत्य है। माया ब्रह्म की शक्ति है। माया से युक्त ब्रह्म की संज्ञा ईश्वर है। यही ईश्वर 'एकोऽहंबहुस्याम्' के अनुरूप जगत् के नाना रूपों में वर्तमान रहता है। शंकराचार्य ने ईश्वर को ब्रह्म का सगुण रूप स्वीकार किया है।[3] संत तुरसीदास निरंजनी की निम्नलिखित साखी में शंकराचार्य का यही मत अभिव्यक्त हुआ है –

तुलसी निरगुन ब्रह्म है, सरगुन ईश्वर जीव।
उभै बाध कूं त्यागिऐ, लक्ष लक्ष ऐकीव।।[4]

ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार करते हुए तुरसीदास निरंजनी उसे वृक्ष से उपमित करते हैं –

निरगुन सरगुन रूप द्वै, बरने वेदन माहिं।
तुरसी निरगुन मूर है, सरगुन डारी आहिं।।[5]

निर्गुण रूप वृक्ष की जड़ के समान है जो दिखाई नहीं पड़ता और वृक्ष की डालियाँ इत्यादि सगुण रूप हैं। वस्तुत: इसके माध्यम से तुरसी यह भी कहना चाहते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष के सन्दर्भ में जड़ का विशेष महत्त्व है क्योंकि वृक्ष की डालियाँ इत्यादि उसी पर आधारित हैं उसी प्रकार ब्रह्म का मूल रूप निर्गुण ही है।

सगुण–साधना का मार्ग भक्ति मार्ग तथा निर्गुण उपासना ज्ञान मार्ग के नाम से अभिहित की जाती है। मूलत: निर्गुणवादी होने के कारण निरंजनी संत जहाँ सभी साधना मार्गों में ज्ञान मार्ग को श्रेष्ठ मानते हैं वहीं भक्ति मार्ग को भी सरल–सहज मार्ग के रूप में राजमार्ग की संज्ञा से अभिहित करते हैं। निरंजनी संत हरिरामदास जहाँ ज्ञान मार्ग की श्रेष्ठता इस प्रकार सिद्ध करते हैं –

जेते साधन मोक्ष के कहे पुरानन माहिं।
तिन मैं साधन मोक्ष को ओर ज्ञान सो नाहिं।
ओर ज्ञान सो नाहिं कर्म अज्ञान सहाई।
ज्ञान हनै अज्ञान तेज ज्यूँ घन तिमराई।

पाक न ह्वै बिन अग्नि करो किन साधन केते।
यू मोक्ष न बिन ज्ञान सुर्ग साधन परि जेते।।[6]

वहीं सगुण–साधना सम्बन्धी भक्ति मार्ग को भी प्रतिष्ठा देते हुए कहते हैं –

देखो दोइ मग मोक्ष्य के शिरै भजन अरु ज्ञान।
भजन पंथ पतिस्याहि मग विघन न व्यापै आन।
विघन न व्यापै आन करै भगवान सहाई।
ज्ञान पंथ अति गहन तहां अतिश्याणूं जाई ।।[7]

निरंजनी संतों का यह दृष्टिकोण कि उन्होंने ब्रह्म के निर्गुण रूप को श्रेष्ठ मानते हुए सगुण रूप को पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया कोई नई बात नहीं थी। प्राचीन भारतीय दर्शन में ब्रह्म के दोनों ही रूप स्वीकृत हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जिन शंकराचार्य ने वेदान्त के माध्यम से वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा की उन्होंने भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप माने थे। यह अवश्य है कि उन्होंने सगुण रूप को हीन माना था। निर्गुण–सगुण के सम्बन्ध में निरंजनियों की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। उन्होंने सगुण को स्वीकार अवश्य किया लेकिन श्रेष्ठता निर्गुण की ही मानी है। रामानन्द में भी निर्गुण और सगुण का जो सम्मिलन मिलता है उससे भी निरंजनी संतों को प्रेरणा मिली हो, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। एक ओर कबीर आदि निर्गुण संतों की लम्बी परम्परा उनकी शिष्य कही जाती है तो दूसरी ओर सगुण रामोपासक भक्तों से भी रामानन्द का सम्बन्ध जुड़ता है।

निरंजनी सम्प्रदाय मूर्ति–पूजा का समर्थक नहीं है लेकिन उसका दृष्टिकोण कबीर आदि निर्गुणवादियों जैसा भी नहीं है। जैसा कि सभी निर्गुणवादी उपासक मानते हैं कि ब्रह्म जगत् में सभी जगह है, सर्वत्र व्याप्त है। तब निरंजनी यह भी कहते हैं कि फिर वह पत्थर और मूर्तियों में क्यों नहीं हो सकता ? नि रंजनी संत हरीदास का कुछ ऐसा ही विचार निम्नलिखित दोहे में व्यक्त हुआ है –

ज्यू मूरति त्यूंही सिला, राम बसे सब माहिं।
जन हरिदास पूरण ब्रह्म, घाटि बाधि कछु नाहिं ।।[8]

तुलसीदास निरंजनी भी मूर्ति में अमूर्त अर्थात् ब्रह्म की भावना से इनकार नहीं करते। उनके अनुसार मूर्ति भी अमूर्त की ओर ले जाने का साधन हो सकती है –

मूरति में अमूरति बसै, अमल आत्माराम।
तुलसी भ्रम बिसराइ कैं, ताही को ले नाम ।।[9]

कुछ एक निरंजनी संतों के काव्य में शालग्राम[10] की पूजा का विधान भी मिलता है जो कबीर आदि के दृष्टिकोण के विपरीत है तथा निर्गुणोपासक होते हुए भी जिसे निरंजनियों के उदार दृष्टिकोण का सूचक माना जा सकता है –

अपनो भलो विचारि कै, सेवो सालिगराम।
प्रथम पेड़ियाँ स्वर्ग की, करि शुभ कर्म निकाम।।[11]

ध्यान देने योग्य है कि कबीर तथा अन्य निर्गुण सम्प्रदाय जिन रामानन्द से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ''रामानन्द ने तीर्थों तथा मूर्तियों को जल–पखान मात्र बतलाते हुए भी शालिग्राम की पूजा का विधान किया था।''[12]

निरंजनी संतों के निर्गुण–सगुण सम्बन्धी यह विचार उनके उस दृष्टिकोण पर आधारित हैं जिसमें वे स्थिति–परिस्थिति की भिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए संसार के मनुष्यों को साधना की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित करते हैं– पहला – सांसारिक गृहस्थ (सामान्य साधक), दूसरा– संसार त्यागी, वैरागी, साधु–संन्यासी। हरिरामदास निरंजनी ने अपने भक्ति सम्बन्धी विवेचन में भक्ति के कर्ममिश्रा और ज्ञानमिश्रा दोनों प्रकार माने हैं।[13] उनके विवेचन से स्पष्ट है कि कर्ममिश्रा भक्ति का सम्बन्ध सांसारिक कर्मों से सम्बद्ध सामान्य गृहस्थों से है और ज्ञानमिश्रा का कर्मबन्धन मुक्त संसार त्यागी विरक्त महात्माओं से। हरिरामदास निरंजनी के विवेचन में कर्ममिश्रा का सम्बन्ध सगुण साधना से तथा ज्ञानमिश्रा का सम्बन्ध निर्गुण साधना से जुड़ता है। निरंजनी संतों ने यह अनुभव किया कि सामान्य जन सीधे–सीधे निर्गुण–निराकार ब्रह्म की साधना में प्रवृत्त नहीं हो सकता उसे एक आधार चाहिए जो सगुण–भक्ति में मिलता है। निरंजनी संत मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान मार्ग की श्रेष्ठता तो प्रतिपादित करते हैं साथ ही सगुण रूप–भक्ति साधना को साधना पथ के प्रारम्भिक सोपान के रूप में महत्त्व देते हैं। वे मानते हैं कि साधक इस प्रारम्भिक अवस्था से जैसे–जैसे आगे बढ़ता जायेगा वैसे–वैसे वह ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप से भी परिचय प्राप्त करता जायेगा और अन्तत: वह स्वयं ही सगुण–साकार रूप का त्याग कर निर्गुण–निराकार में लीन होता जायेगा। तुरसीदास निरंजनी ने इस भाव–विचार को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है –

कन्या कंवारी गुडीन संग, तावत खेलै करि करि रंग।
तुलसी जावत पतिहि न पावै, पति पावै तब तिनहि बहावै।।[14]

अर्थात् जिस प्रकार बाल्यावस्था में कन्याएँ गुड्डे–गुड्यिों के साथ भाँति–भाँति के खेल रचाती हैं। लेकिन युवावस्था में वास्तविक पति प्राप्त होने पर गुड्डे–गुड़ियों के खेल से किनारा कर लेती हैं, उसी प्रकार सगुण रूप साधना के प्रारम्भिक सोपान से आगे बढ़ता हुआ साधक वास्तविक अर्थात् निर्गुण–साधना में लीन हो जाता है। यही भाव तुरसीदास के परवर्ती निरंजनी संत–सेवादास की वाणी में भी व्यक्त हुआ है।[15]

स्पष्ट है कि निरंजनी सम्प्रदाय का निर्गुण–सगुण सम्बन्धी दृष्टिकोण कबीर आदि निर्गुण–परम्परा के संत–सम्प्रदायों से भिन्न है। मूलत: निर्गुण उपासना पर बल देते हुए भी उन्होंने सगुण रूप को भी स्वीकार्यता प्रदान की और इस प्रकार तत्कालीन समाज में फैले निर्गुण–सगुण सम्बन्धी कोलाहल को प्रशमित करने का प्रयास किया। निरंजनी संत हरीदास जी की वाणी में इस विवाद से परे रहकर शांत भाव से सच्चे मन से ईश्वराराधन का यही दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है –

नहि देवल सूँ वैरता, नहि देवल सूँ प्रीति।
कृतम तजि गोविन्द भजै, या साधों की रीति।।[16]

कबीर तथा निर्गुण परम्परा के सम्प्रदायों में सामाजिक वर्ण–व्यवस्था का प्रखर विरोध देखने को

मिलता है। वर्ण तथा जाति व्यवस्था का विरोध निर्गुण संत–काव्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में मान्य है। लेकिन निर्गुण–परम्परा के ही निरंजनी सम्प्रदाय में वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी थोड़ा भिन्न दृष्टिकोण मिलता है। वस्तुत: निरंजनी सम्प्रदाय ने वर्ण–व्यवस्था को एकदम खारिज नहीं किया है। इस सम्प्रदाय के कुछ संतो ने वर्ण–व्यवस्था के सम्बन्ध में अपने स्पष्ट विचार सामने रखे हैं। उनके सम्बन्धित काव्यांशों के गहन अनुशीलन से जो निष्कर्ष निकलता है उससे ऐसा लगता है कि उन्होंने मानव संसार को दो भागों में बाँट दिया है – एक कर्म संसार, दूसरा धर्म संसार। कर्म संसार अर्थात् सांसारिक कर्मों में बंधे सामान्य गृहस्थजन और धर्म संसार अर्थात् कर्मबन्धन मुक्त साधु–संन्यासी, संसार त्यागी विरक्त जन। निरंजनी संतों के विचारों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे वर्ण–व्यवस्था को कर्म–संसार से जोड़ने के पक्ष में हैं और धर्म संसार को उससे मुक्त रखते हैं। तुरसीदास निरंजनी स्पष्ट लिखते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चतुर्वर्ग कर्म संसार में बंधे मनुष्यों के हैं। जो कर्ममुक्त हैं अर्थात् संसार त्यागी हैं वे वर्ण – व्यवस्था से भी मुक्त हैं –

कर्महि ब्राह्मन कर्महि क्षत्रिय कर्महि बैस सूद्र पुनि तत्रिय।
तुलसी ऐ कर्मन के नाम निहकर्मी के नाव न गांव ॥[17]

तुलसीदास वर्णाश्रम को काया का धर्म मानते हैं। काया कर्म रूप है। जो शरीर से ऊपर उठ चुके हैं और कर्मों से मुक्त हो चुके हैं वे वर्णाश्रम से भी मुक्त हैं –

तुलसी बरनाश्रम सब काया लौं सो काया कर्म कौ रूप।
कर्म रहित जे जन भए ते जन परम अनूप ॥[18]

निरंजनियों ने सामान्य सांसारिकों के लिए वर्णाश्रम धर्म का पालन आवश्यक माना है। वे वर्णाश्रम को वेद मार्ग कहते हैं –

अपने अपने वर्ण कै, अरु आश्रम कै कर्म।
करिये तजि फल कामना, वेद कहै जिहिं धर्म॥[19]

हरिरामदास निरंजनी के अनुसार वर्णाश्रम धर्म के पालन से हृदय निर्मल होता है और निर्मल हृदय में ही ईश्वर के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है और वह दु:खों से मुक्त होता है। इसलिए मनुष्यों को निष्काम भाव से अपने कर्म करने चाहिए –

अपने अपने वर्ण के अरु आश्रम के धर्म।
करिये चित्त लगाय कै नित्य निकाम सु कर्म।[20]

निरंजनी संत काव्य में न केवल वर्ण–व्यवस्था का समर्थन मिलता है, बल्कि एक निरंजनी संत हरिरामदास ने तो चारों वर्णों के कर्त्तव्य–कर्मों का निर्देश भी कर दिया है। उनका मानना है कि सभी वर्ण के लोग नीति और धर्म मार्ग का अनुसरण करते हुए सद्गति को प्राप्त कर सकते हैं।[21]

निरंजनी सम्प्रदाय के वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी विचारों को जब हम पूर्व परम्परा के परिप्रेक्ष्य में देखते

हैं तो उन्हें एकदम नया या परम्परा से भिन्न नहीं कह सकते। यह सही है कि कबीर तथा अन्य निर्गुण सम्प्रदाय वर्ण–व्यवस्था के पूरी तरह विरोधी हैं, लेकिन उनसे पूर्व के निर्गुण विचारकों का मत वर्ण–व्यवस्था के सम्बन्ध में ठीक वही नहीं है जो कबीर आदि का है। ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को प्रतिष्ठित करने वाले अद्वैत दर्शन के व्याख्याता 'शंकराचार्य वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक हैं।[22] जो निर्गुण संत और सम्प्रदाय अपने को जिन रामानन्द की परम्परा से जोड़ते हैं, वर्ण–व्यवस्था के सम्बन्ध में उनके विचार ठीक वही नहीं हैं जो रामानन्द के हैं। सही बात तो यह है कि निरंजनी सम्प्रदाय के विचार रामानन्द से मेल खाते हैं। रामानन्द के वर्ण–व्यवस्था सम्बन्धी विचारों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार रेखांकित किया है – 'भक्तिमार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है – जैसा कि कुछ लोग समझा और कहा करते हैं – कि रामानन्द जी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न–भिन्न कर्त्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान अधिकार स्वीकार किया।'[23]

निर्गुण सम्प्रदायों के सम्बन्ध में सामान्यत: एक यह विशेषता भी स्थापित–सी हो गई है कि उनमें पुस्तक तथा पुस्तकीय ज्ञान की अवहेलना मिलती है। प्राय: निर्गुण सन्तों में प्राचीन धर्म–शास्त्र तथा वेद, पुराणों आदि के प्रति नकार का भाव है। पढ़ने–लिखने या पढ़े–लिखे होने को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मूवा' का विचार रखने वाले संतों ने पोथी ज्ञान की बजाय आत्मानुभूति पर जोर दिया। लेकिन इन निर्गुण–सम्प्रदायों में एक सम्प्रदाय ऐसा भी है जो आत्मानुभूति के महत्त्व को मानता हुआ भी प्राचीन धर्म–शास्त्रों में निहित ज्ञान को भी पूरा महत्त्व देता है। निरंजनी सम्प्रदाय में वेद, पुराणों, उपनिषदों , स्मृतियों, विभिन्न दार्शनिक ग्रन्थों के प्रति न केवल सम्मान का भाव है, बल्कि इन्होंने उनमें निहित ज्ञान को अपनी वाणी दी है। तुरसीदास निरंजनी अपनी रचना के सम्बन्ध में कहते हैं –

अनंत सास्त्र अनंत बानी, अनंत कथा रिष मुनिन बखानी।
तुरसी यामैं सब कौ सार, हम नीकैं कीयौ निरधार ।।
याही मैं भा(ग)वत को सारभूत है सोइ।
याही मैं बासिष्ट मत वूझे विरला कोइ।।[24]

श्रीमद्भागवत तथा योगवशिष्ठ की भाँति निरंजनी संत हरिरामदास के काव्य में भी अनेकश: प्राचीन धर्म, दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों का नकारात्मक रूप में नहीं सकारात्मक रूप में उल्लेख मिलता है –

गईऐ बेदन माहिं हरि गईए गीता माहिं।
रामायन मैं गाईये ऐक हरी पर नाहिं।
ऐक हरी पर नाहिं गाईये भारथ माहीं।
शट अष्टादशा माहिं कथन हरि ही को आहीं।।[25]

निरंजनी संत मनोहरदास ईश्वर के समान ही वेदों की वाणी को भी सत्य रूप मानते हैं

साचो ईश्वर जानिये, साची वाणी वेद।
साचो चाहे मोक्ष सुख, लह्यो वेद को भेद।।[26]

अन्य निर्गुण–सम्प्रदायों से निरंजनी सम्प्रदाय इस दृष्टि से विशिष्ट है कि जहाँ अन्य सम्प्रदायों में प्राय: गैर पढ़े–लिखे या कम पढ़े–लिखे संतों की संख्या अधिक थी वहीं निरंजनी सम्प्रदाय में शायद ही कोई गैर पढ़ा–लिखा संत हो। इस सम्प्रदाय के अनेक संतों को तो संस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। इस दृष्टि से मनोहरदास, भगवानदास, हरिरामदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन संतों ने संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन किया था यह इनकी रचनाओं से स्पष्ट है। मनोहरदास ने वेदान्त दर्शन की सर्वोच्चता सिद्ध करते हुए उसे अपने ग्रन्थों – ज्ञानमंजरी, ज्ञानवचनचूर्णिका, वेदान्त महावाक्यभाषा आदि में प्रस्तुत किया है। भगवानदास निरंजनी ने भी भक्ति–दर्शन सम्बन्धी अनेक ग्रथों की रचना की जिनमें से अध्यात्मरामायणभाषा, वैराग्य वृन्द तथा कार्तिकमाहात्म्य तो सीधे–सीधे संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद ही हैं। इसी प्रकार संत हरिरामदास निरंजनी ने शंकराचार्य के संस्कृत में लिखे ग्रन्थ विष्णुसहस्रनाम भाष्य का अनुवाद किया है।

स्पष्ट है कि निरंजनी सम्प्रदाय धर्म–दर्शन सम्बन्धी ग्रथों का विरोधी नहीं है, बल्कि वह उनमें निहित ज्ञान को मानव मात्र के लिए उपयोगी मानकर उसे ठीक–ठीक समझने और अपनाने पर बल देता है। यह सही है कि कुछ पढ़े–लिखे लोग इन ग्रन्थों की स्वार्थ की दृष्टि से अपने ढंग से व्याख्या कर इनका दुरुपयोग कर रहे थे। निरंजनी संतों ने धर्म–ग्रन्थों की दुहाई देकर सामान्य जन पर अपना प्रभाव जमाने वालों तथा उन्हें अपनी उदर–पूर्ति का साधन बनाने वालों को आड़े हाथों लिया है–

पांडे पोथी बांचि करि, थोथी करि करि बात।
गोथीणैं जगि घालिया, चोथा राति जगात।।[27]

सार–असार को नहीं समझने वाले पोथी–पंडितों को निरंजनी संत हरिरामदास ने भार–वाहक गधे के समान माना है –

बिना समझि पढ़ि ग्रंथ भार खर ज्यूँ बहैतेई।
पंडित वहै हरिराम ब्रह्म जानैं जे केई।।[28]

जहाँ तक धार्मिक–दार्शनिक ग्रन्थों तथा उनमें निहित ज्ञान के सम्बन्ध में निरंजनी तथा कबीर एवं अन्य संतों के दृष्टिकोण में अन्तर का सम्बन्ध है तो दोनों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीर स्वयं पढ़े–लिखे नहीं थे। अन्य निर्गुण सम्प्रदायों में भी पढ़े–लिखे संतों की संख्या बहुत कम थी, जबकि निरंजनी सम्प्रदाय में शायद ही कोई संत हो जो पढ़ा–लिखा न हो। निरंजनी सम्प्रदाय विचारधारा के स्तर पर जिन आचार्यों और साधकों से विशेष प्रभावित था वे सभी उच्च कोटि के विद्वान साधक थे। शंकराचार्य के सम्बन्ध में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है, उनका अध्ययन–अनुशीलन उनकी विद्वत्ता सर्वविदित है। गोरखनाथ का पाण्डित्य भी निर्विवाद है। देशीय भाषा के साथ–साथ उनकी संस्कृत रचनाएँ भी कही जाती हैं। रामानन्द भी अपने समय के पढ़े–लिखे ज्ञान–गंभीर महात्मा थे। वैसे तो कबीर तथा अन्य निर्गुण सम्प्रदाय अपने को अद्वैत दर्शन के रूप में शंकराचार्य से, योग–साधना के रूप में गोरखनाथ से तथा गुरु–परम्परा के रूप में रामानन्द से जोड़ते हैं। यह साम्य होते हुए भी यदि पुस्तकों तथा पुस्तकों में निहित ज्ञान के प्रति कबीर आदि में तिरस्कार का भाव दिखाई पड़ता है तथा निरंजनियों में सम्मान का भाव तो उसका एक कारण यह भी कहा जा सकता कि जो स्वयं पढ़ा–लिखा नहीं था वह लिखित पुस्तक ज्ञान को क्यों कर महत्त्व देता। निरंजनी

सम्प्रदाय में साधारण रूप में तो प्राय: सभी संत साक्षर थे, शिक्षित थे, बल्कि कइयों को तो संस्कृत भाषा का भी अच्छा ज्ञान था और उन्होंने संस्कृत के धर्म–दर्शन सम्बन्धी मूल ग्रन्थों को स्वयं पढ़कर ज्ञानार्जन किया था।

इस प्रकार निर्गुण निरंजनी सम्प्रदाय की मान्यताएँ सामान्यत: निर्गुण संत–परम्परा की मानी जाने वाली व्यावर्तक विशेषताओं से पूरी तरह मेल नहीं खातीं। अन्य निर्गुण सम्प्रदायों से निरंजनी सम्प्रदाय की इस वैचारिक भिन्नता के मद्देनजर ही डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का यह विचार बना कि मध्यकालीन निर्गुण भक्ति–परम्परा में संत मत और सूफी मत के अतिरिक्त निरंजन मत को तीसरे मत के रूप में माना जाना चाहिए।[29] यह सही है कि अन्य संत मतों से निरंजनी मत में उपरिविवेचित भिन्नताएँ हैं, परन्तु केवल इसी कारण उसे संतमत से या अन्य निर्गुण–सम्प्रदायों से अलग मानना ठीक नहीं होगा। जैसा कि हम पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं कि निरंजनियों का यह दृष्टिकोण पूर्ववर्ती उन्हीं आचार्यों, साधकों से जुड़ता है जिनसे अन्य निर्गुण सम्प्रदाय भी किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं। निरंजनी सम्प्रदाय में कबीर के प्रति भी पूर्ण श्रद्धा भाव मिलता है। प्राय: सभी निरंजनी संतों ने अपनी वाणी में अत्यन्त आदर के साथ कबीर का नामोल्लेख किया है। संत हरीदास स्पष्ट कहते हैं कि मैंने बहुत सोच–विचार कर कबीर का 'करड़ा पंथ (कठोर–मार्ग)' स्वीकार किया है।[30] मोहनदास के सम्बन्ध में राघवदास अपने भक्तमाल में कहते हैं कि –'राघो करै हठ चालन दे नहिं, नाम कबीर की देत दुहाई।'[31] निरंजनी संत हरिरामदास ने भी कबीर आदि निर्गुण संतों की वाणी को प्रमाण–स्वरूप उद्धृत किया है जो उनके प्रति श्रद्धा भाव का सूचक है –

हरीदास रैदास, बहुत कथि गये कबीरा।
नर तन सजि भजि राम, बहू मति जगत बहीरा ।।[32]

ऐसी स्थिति में निरंजनी सम्प्रदाय को कबीर की परम्परा से अलग मत के रूप में मान्यता देना ठीक नहीं होगा। वस्तुत: निरंजनी सम्प्रदाय भारतीय चिंतन–परम्परा के परिप्रेक्ष्य में तथा तत्कालीन धार्मिक –सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में एक ऐसा मार्ग निकालने का प्रयास कर रहा था, एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश कर रहा था जो तत्कालीन खंडन–मंडन अर्थात् उखाड़–पछाड़ से मुक्त हो और जिसमें सभी लोग एक परिवार की भाँति रहें। ईश्वरोपासना का स्वरूप कुछ भी हो पर वह सच्चे मन से होनी चाहिए, उनके लिए यही महत्त्वपूर्ण था। वर्ण–भेद को ऊँच–नीच के भेदभाव का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए। प्राचीन धर्म–दर्शन और ज्ञान की विरासत जो पुस्तकों के रूप में सुरक्षित है उसका मानवता के हित में उपयोग किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ – सूची :

1. स्वामी मंगलदास के संग्रह का गुटका (हस्तलिखित), वसना नम्बर–5, पत्र संख्या 657–658, प्राप्ति स्थान – आचार्य सांवरदास शास्त्री, श्री महामाया शक्ति पीठ, नवलगढ़ (झुन्झुनू, राजस्थान)

2. तुलसीदास जी की वाणी (हस्तलिखित), बंदन विधान, छन्द संख्या–4, आचार्य सांव रदास शास्त्री, महामाया शक्ति पीठ, नवलगढ़ से प्राप्त फोटो प्रति

3. शर्मा डॉ. राममूर्ति, शंकराचार्य (उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन), पृष्ठ संख्या 116–117

4. तुलसीदास जी की वाणी, बंदन विधान, छन्द संख्या – 5

5. मिश्र डॉ. भगीरथ, निरंजनी सम्प्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी, पृष्ठ संख्या–37 से उद्धृत, प्रकाशक–लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण–1964

6. निरंजनी हरिरामदास कृत परमार्थसतसई (हस्तलिखित) छन्द संख्या–605, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में संगृहीत प्रति, ग्रन्थांक–516

7. वही, छन्द संख्या –467

8. साधु देवादास, श्री हरिपुरुष जी की बाणी, भरम विध्वंस को अंग (साखी भाग), छन्द संख्या–1

9. तुरसीदास जी की वाणी, भरम विधूंस को परिकरन (साखी भाग), छन्द संख्या–6

10. विष्णु की एक प्रकार की मूर्ति जो पत्थर की होती है। यह मूर्ति प्राय: पत्थर की गोलियों या बट्टियों आदि के रूप में होती है और उस पर चक्र का चिह्न बना होता है। अनेक पुराणों में इसकी पूजा का माहात्म्य मिलता है।

11. निरंजनी हरिरामदास कृत परमार्थपंचसई, छन्द संख्या–113, मंगलदास स्वामी द्वारा प्रतिलिपित प्रति, प्राप्ति स्थान–आचार्य सांवरदास शास्त्री, श्री महामाया शक्ति पीठ, नवलगढ़ (झुन्झुनूं)

12. कुछ निरंजनी संतों की बानियाँ (डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध नामक पुस्तक में संगृहीत) पृष्ठ संख्या–60

13. परमार्थसतसई, छन्द संख्या–103

14. तुलसीदास जी की वाणी, भरम विधूंस को परिकरन (साखी भाग), छन्द संख्या–98

15. शास्त्री आचार्य सांवरदास, महाराज सेवादास जी की वाणी, भरम विधूंस को अंग (कुंड लिया), छन्द संख्या–3, प्रकाशक, महामाया मन्दिर, नवलगढ़ (झुन्झुनू)

16. साधु देवादास, श्री हरिपुरुष जी की बाणी, भरम विध्वंस को अंग (साखी भाग), छन्द संख्या–3

17. तुलसीदास जी की वाणी, भरम विधूंस को परिकरन (साखी भाग), छन्द संख्या–90

18. वही, छन्द संख्या–89

19. परमार्थपंचसई, छन्द संख्या–116

20. वही, छन्द संख्या–117

21. परमार्थसतसई, छन्दसंख्या–297, 298, 299, 300

22. सिंह डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ संख्या–116, प्रकाशक–राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–2009

23. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या–100–101, प्रकाशक–प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण–सन् 2010

24. तुरसीदास जी की वाणी, ग्रंथ महमा कौ परिकरन, छन्द संख्या 2–3

25. परमार्थसतसई, छन्द संख्या–455

26. शुक्ला डॉ. सावित्री, निरंजनी सम्प्रदाय के हिन्दी कवि, पृष्ठ संख्या 612 से उद्धृत, प्रकाशक– मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल, प्रथमावृत्ति–1974

27. परमार्थसतसई, छन्द संख्या–61

28. वही, छन्दसंख्या–746

29. उपाध्याय नागेन्द्र नाथ, नाथ और संत साहित्य (तुलनात्मक अध्ययन), पृष्ठसंख्या–193, प्रकाशक–काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–5

30. स्वामी मंगलदास, श्री महाराज हरिदास जी की वाणी, साध महमा को अंग (साखी भाग), छन्द संख्या–1

31. राघवदास कृत भक्तमाल, सम्पादक–श्री अगरचन्द नाहटा, छन्द संख्या–438, प्रकाशक–राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1965 ई.

32. परमार्थसतसई, छन्द संख्या–148